# पढ़ना बिना अर्थ के: भारतीय कक्षाओं की दुविधा

**शोभा सिन्हा**

पढ़ने का प्राथमिक उद्देश्य है, लिखे हुए से अर्थ ग्रहण करना। पढ़ने का उद्देश्य तभी पूरा होता है जब हम उसका अर्थ समझ पाएँ, फिर चाहे हम किसी वस्तु को इस्तेमाल करने के निर्देशों को पढ़ रहे हों या फिर वनोन्मूलन से संबंधित कोई जटिल रिपोर्ट पढ़ रहे हों। लिखे हुए से अर्थ ग्रहण करने की क्षमता स्कूल की पढ़ाई के दौरान विशेष रूप से ज़रूरी हो जाती है क्योंकि सभी विषयों में सफलतापूर्वक ज्ञान निर्माण करने के लिए पढ़ने-लिखने की योग्यता आवश्यक होती है। इसलिए, खुद से न पढ़ पाना न केवल भाषा को प्रभावित करता है बल्कि अन्य विषयों को भी प्रभावित करता है। अत: पढ़ने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि बच्चे विभिन्न प्रकार की सामग्री, विवरण से लेकर वर्णन तक, को समझने की रणनीतियाँ बना सकें।

पढ़कर समझने का इतना स्पष्ट महत्व होने पर भी, भारतीय कक्षाओं में स्थिति सामान्यत: बहुत अच्छी नहीं है। उदाहरण के लिए, नरसिम्हा (2004) ने मुम्बई के कुलीन स्कूलों के बच्चों पर एक अध्ययन किया, जिसमें उन्होंने बच्चों की विवरणात्मक, वर्णनात्मक व निर्देशात्मक सामग्री को पढ़कर समझने की क्षमता को जाँचा। इस जाँच में विद्यार्थियों की दक्षता में विविधता देखी गई और इनका प्रदर्शन सार्वजनिक परीक्षाओं के औसत से भी कम रहा। नरसिम्हा ने स्पष्ट किया कि ये परिणाम बताते हैं कि बच्चों में अपरिचित पाठ्यसामग्री को पढ़कर समझने की क्षमता नहीं है। एक अन्य संदर्भ में, माटरेजा (2006) ने दिल्ली के सरकारी विद्यालयों के सातवीं, नवीं और ग्यारहवीं के बच्चों की अंग्रेज़ी पढ़कर समझने की क्षमता का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि अंग्रेज़ी की कक्षाओं में पढ़कर समझना प्राथमिकता पर ही नहीं था और शिक्षक समझ को सुनिश्चित करने के लिए पाठ्यसामग्री के अनुवाद पर निर्भर थे। फलस्वरूप, यह आश्चर्यजनक नहीं था कि बच्चे पढ़कर समझने में कमज़ोर प्रदर्शन कर रहे थे। वहीं, दिल्ली के एक कुलीन विद्यालय में ग्यारहवीं के बच्चों को पढ़ाने के दौरान सिन्हा (1985) ने पाया कि बच्चे साहित्य को समझने के लिए बहुत हद तक शिक्षक पर निर्भर थे।

इन सभी समस्याओं के बावजूद, कोई भी शिक्षक पढ़कर समझने के महत्व को कभी भी नहीं नकारेगा। इन हालात को समझने व उनके मद्देनजर अपनी संभव भूमिका को देखने के

लिए किसी को भी कक्षा में पढ़ना सिखाने के लिए अपनाए जा रहे मौजूदा तरीकों को ध्यान से समझना होगा। स्कूल में इस्तेमाल किए जाने वाले पढ़ने-पढ़ाने के तरीके भी अनजाने में बच्चों के पढ़कर समझने में बाधक बनते हैं। इस पर्चे में सबसे पहले मैं पढ़कर समझने की प्रक्रिया का वर्णन करूँगी, तत्पश्चात् समझकर पढ़ने में कक्षा-कक्ष में इस्तेमाल किए जाने वाले तरीके किस प्रकार अपनी भूमिका निभाते हैं, यह समझने के लिए प्राथमिक व उच्च प्राथमिक कक्षाओं की स्थिति का जायजा लूँगी।

पिछले कुछ दशकों में, समझ कर पढ़ने की क्षमता पर बहुत से शोध हुए हैं। भारतीय शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेजों में विद्यार्थी अक्सर कहते हैं कि सुनना और पढ़ना निष्क्रिय प्रक्रियाएँ हैं जबकि सीखना और बोलना सक्रिय प्रक्रियाएँ हैं। लेकिन यह बात सच से काफी परे है। गहन शोध (दुर्भाग्यवश भारत में नहीं) दिखलाता है कि पढ़कर समझना एक जटिल प्रक्रिया है। पाठक के पास पाठ्यवस्तु का अर्थ उसी क्षण नहीं पहुँच जाता जिस क्षण में वह उसे डिकोड करता है! हम अपने ही किसी अपरिचित क्षेत्र में कुछ पढ़ने की प्रक्रिया के बारे में सोच सकते हैं, हम उस पाठ्य सामग्री/ वस्तु को डिकोड तो ज़रूर कर पाएँगे लेकिन उसके अर्थ को समझना मुश्किल होगा। पढ़कर समझना "पाठक के ज्ञान और क्षमताओं, पाठ्यवस्तु की माँग, पाठक द्वारा पठन कार्य के दौरान की जाने वाली गतिविधियों और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में किए जाने वाले पठन कार्य" के बीच का एक जटिल पारस्परिक संवाद है। (विलकिन्सन एवं सन, 2011 पेज 359)

साथ ही यह महज़ कुछ विशिष्ट उपवाक्यों/खंडों और वाक्यों की स्मृति नहीं है बल्कि पाठक, पाठ्यसामग्री और इस पाठ्यसामग्री के संदर्भ के बीच की पारस्परिक क्रिया/ संवाद द्वारा बने संपूर्ण अर्थ का मसला है (ड्यूक व कारलिसल, 2011)। साफ तौर पर यह एक सक्रिय रचनात्मक प्रक्रिया है। कुछ चीज़ें/गतिविधियाँ जो पाठक अपनी रुचि बनाए रखने के लिए कर सकता है उनमें से एक है; पाठ्यसामग्री को अपने पूर्व ज्ञान से जोड़ना, (एंडरसन, 1994) अपने समझने की प्रक्रिया के बारे में सचेत रहना और यदि समझने में चूक हो रही है तो उसके लिए कुछ उपचारात्मक उपाय करना (ब्राउन 1980)। इस क्षेत्र में किए गए शोध दर्शाते हैं कि आमतौर पर बच्चे अपने पूर्व-ज्ञान से संबंध नहीं बना पाते हैं और न ही वे अपने समझने में असफलता के बारे में सचेत होते हैं, और ज़्यादातर खुद को उपचारात्मक उपायों की ज़रूरत में पाते हैं। भारत में भी हमें समझ के साथ पढ़ने के लिए अपनाई जाने वाली शिक्षण पद्धति की प्रकृति पर गौर करना होगा क्योंकि यह विद्यालय में बने रहने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। अत: यह समझने के लिए कि शिक्षण पद्धति का बच्चों की पढ़कर

समझने की क्षमता पर किस तरह का प्रभाव पड़ता है हम भारतीय विद्यालयों में कक्षाओं की परिस्थितियों की जाँच करेंगे।

पहले, मैं प्राथमिक स्तर के बारे में चर्चा करूँगी जहाँ बच्चा पढ़ना सीखता है और फिर मैं प्रारम्भिक कक्षाओं की ओर बढ़ूँगी।

**प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ना सीखना : अर्थहीनता में डूबी कवायद**

प्राथमिक शिक्षा में पढ़कर समझ बनाने की शिक्षण पद्धति को ज़्यादातर नज़रंदाज़ किया जाता है और डिकोडिंग पर ज़ोर दिया जाता है। (पियर्सन व ड्यूक, 2002) बाकी देशों की अपेक्षा भारत में स्थिति और भी खराब है क्योंकि अन्य देशों में शिक्षक बच्चों को कहानियाँ सुनाते हैं और इससे उनका पाठ्यपुस्तक के अलावा व्यापक बाल साहित्य से परिचय होता है। भारत में, ज़्यादातर बच्चों के लिए स्कूल ही एक मात्र ऐसी जगह होती है जहाँ पर उनका साक्षरता से सामना होता है और स्कूलों के साक्षरता से जूझने के तरीके को पढ़ने के *बहुपरती अभ्यास* के तौर पर समझा जा सकता है जहाँ सबसे पहले शब्द ध्वनि को उच्चारित करने के बारे में सोचा जाता है, फिर उसके अर्थ के बारे में सोचा जाता है और आखिर में अगर ज़रूरत पड़े तो लिखित भाषा के काम और प्रासंगिकता के बारे में सोचा जाता है। कौशिक (2004) ने अपने शिक्षकों की प्रारंभिक पठन क्रिया के बारे में अवधारणाओं के संबंध में किए गए शोध में यह पाया कि शिक्षक प्रारंभिक पठन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य अक्षरों की क्रमिकता पर प्रवीणता हासिल करना और अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाने में पारंगत होना मानते थे। ऐसी पद्धति में अर्थ के महत्व को पीछे छोड़कर कोड पर प्रवीणता हासिल करने पर ज़ोर दिया जाता है। पाठ्यपुस्तक, खासकर प्रवेशिकाओं (प्राइमर) को इसके लिए दोषी ठहराया गया है। लेकिन साथ ही कक्षा की कार्य प्रणाली में भी समस्याएँ हैं। इस भाग में पहले हम पाठ्यवस्तु को देखेंगे और उसके बाद प्रारंभिक प्राथमिक कक्षाओं की कार्यप्रणाली को जाँचेंगे।

पाठ्यपुस्तकें, पाठ्यवस्तु को सरलीकृत करने की कोशिश करती हैं ताकि पढ़ना सीखना शुरू करने वाले बच्चों के लिए पठन क्रिया आसान हो जाए। हालाँकि काफी बार यह सरलीकरण पाठ्यवस्तु की संसक्ति (coherence), अर्थ और रुचि की कीमत पर होता है। प्रवेशिकाएँ इस पद्धति का एक उदाहरण हैं। परंपरागत रूप से प्रवेशिकाओं का ध्यान बच्चों को समझने की कला (कैसे समझा जाए) सिखाने पर नहीं होता।

उनका ध्यान मुख्य रूप से बच्चों को डिकोडिंग सिखाने पर केंद्रित होता है। सिन्हा (2000) ने हिंदी प्रवेशिकाओं का विश्लेषण करके पाया कि वे स्वरों (मात्रा) के इर्दगिर्द होती हैं। अत: पाठों में किसी एक मात्रा का चुनाव करके उससे संबंधित शब्दों की एक सूची दी जाती है और साथ में कुछ वाक्य जिनमें उस विशिष्ट स्वर का इस्तेमाल होता है।

उदाहरणत: 'इ' की ध्वनि सिखाने के लिए निम्नलिखित शब्दों का उपयोग किया गया था:

मिठास, सितार, बारिश, पॉलिश, तकिया, बिलाव, धनिया, लिफाफा, खटिया। (सिन्हा, 2000, पृ. 39)

हालाँकि हर शब्द अपने आप में अर्थपूर्ण है लेकिन उनमें कोई आपसी संबंध नहीं है (मात्रा के सिवाय) और इसी कारणवश उनका कोई सामूहिक अर्थ नहीं है। पाठ में, शब्दों की सूची के बाद दिए गए वाक्य भी असंबद्ध हैं और केवल ध्वनि (इ की ध्वनि) की दृष्टि से जुड़े हुए हैं। सिन्हा (2010) प्रवेशिकाओं की गुणवत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए कहती हैं कि “वास्तव में वे यह सिखाती हैं कि पढ़ते समय अर्थ न तलाशा जाए।” अगर कोई इस पाठ्यवस्तु को समझने की दृष्टि से पढ़े तो उसका अनुभव बड़ा ही अजीबो-गरीब होगा क्योंकि यहाँ पर समझने लायक अनुकूल कोई सामंजस्यपूर्ण/सुसंगत पाठ्यवस्तु है ही नहीं (पृ. 122)। अत: ऐसी स्थिति में न केवल पाठक का पाठ्यवस्तु से जुड़ाव व संवाद असंभव है और नदारद भी है बल्कि बच्चा वास्तविक तौर पर अर्थ का निर्माण न करना सीखता है। पिछले कुछ सालों में इन पाठ्यवस्तुओं को लिखने के तरीके में कुछ बदलाव हुए हैं। हालांकि अब भी बहुत से स्कूलों में पढ़ना सिखाने के लिए इन पारंपरिक प्रवेशिकाओं का ही इस्तेमाल होता है, जिनमें कुछ संबद्धता और वाक्यों में कुछ जुड़ाव दिखता भी है लेकिन तब भी पाठ इतने नीरस हैं कि उनको पढ़ना बेकार की कवायद करना ही है।

यहाँ तक कि पाठ्यवस्तु अच्छे से लिखी हुई होने पर भी (उदाहरण के लिए, हाल ही में एनसीईआरटी ने किताबों में अर्थ वाले हिस्से को रखा) उन्हें कक्षा में इस तरह से नहीं पढ़ाया जाता कि वे अर्थ निर्माण में कुछ मदद करें। कक्षा में बच्चे सस्वर वाचन करते हैं, उत्तरों को लिखते व याद करते हैं और इसके अलावा कहानी को अन्य भाषाई कौशल सिखाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है, जैसे- कहानी में संज्ञा और क्रिया के उदाहरण ढूँढना तथा समझ पर जरा भी ध्यान नहीं देना। अपनी इस बात को वर्णित करने के लिए हमने भारत के दो अलग-अलग हिस्सों में कक्षाओं का अवलोकन किया। पहला अवलोकन हमने झारखण्ड में कक्षा एक का किया, जहाँ शिक्षिका बच्चों को एक पाठ को कई बार सस्वर पढ़ने के लिए कह

रही थी। पूरा ध्यान शब्दों को सही से उच्चारित करने पर था। इसके बाद उसने बच्चों को पाठ को अच्छी लिखावट में लिखने के लिए कहा। इस पूरी प्रक्रिया में, वहाँ अर्थ पर या पाठ्यवस्तु के अन्य किसी पहलू पर कोई चर्चा नहीं हुई। पाठ्यवस्तु बहुत ही सुसंगत व रुचिपूर्ण थी, लेकिन अर्थ की दृष्टि से उस पाठ्यवस्तु के साथ कुछ भी नहीं किया गया। इसी तरह बैंगलोर में स्थित एक स्कूल की कक्षा में, कहानी पढ़ाते समय, पूरा ध्यान ध्वनि जागरूकता (फोनोलॉजिकल अवेयरनेस) पर केन्द्रित था। बच्चों को सिखाया जा रहा था कि किसी शब्द में से कैसे शब्दांश (सिलेबल) को ढूँढा जाता है। दूसरी कक्षा के इन बच्चों ने लगभग आधा घण्टा कहानी के एक गद्यांश को पढ़ने में लगाया और जब वे प्रत्येक शब्दांश (सिलेबल) को सुनते तो ताली बजाते। प्रत्येक शब्दांश को सुनने व शब्दों पर चर्चा करने की इस प्रक्रिया में कहानी का मूल तत्व पूरी तरह से खत्म हो गया क्योंकि बच्चों का पूरा ध्यान ध्वनि पर ही केन्द्रित था। वैसे भी, सीखने में समझ को कोई खास मुद्दा नहीं समझा जाता है। कहानियों को विभिन्न भाषाई कौशल सिखाने के लिए इस्तेमाल किए जाने के परिणामस्वरूप, बच्चे पाठ्यवस्तु के अर्थ से भटक जाते हैं। कई बार वे इस बात की अन्तर्दृष्टि को ही भूल जाते हैं कि उन्हें पाठ्यवस्तु को अर्थ के लिए भी पढ़ना है।

बच्चों को पढ़ना सिखाने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली विभिन्न विधियों पर बहुत वाद-विवाद है। हालाँकि इस पर्चे में इस विवाद को सुलझाने का प्रयास नहीं किया गया है। केवल इस बिन्दु को उठाने की कोशिश की गई है कि जब कहानियों और पाठ्यवस्तु का इस्तेमाल अर्थ को दरकिनार करते हुए और केवल भाषाई घटकों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए किया जाता है तो बच्चे कभी भी पाठ्यवस्तु के अर्थ के साथ जुड़ाव बनाना नहीं सीख पाते हैं तथा पाठ्यवस्तु के अर्थ के साथ यह जुड़ाव न बना पाना बच्चे के लिए इस अर्थ में घातक दुष्परिणाम साबित हो सकता है कि पढ़ने के प्रति उनकी ललक ही खत्म हो जाए (ब्लॉक, रोलर, जॉय एवं गेने, 2002)। भारत में अक्सर स्कूलों में इस प्रक्रिया को अपनाने के कारण बच्चे यह अहसास ही नहीं कर पाते कि उन्हें पाठ्यवस्तु को अर्थ समझने की दृष्टि से भी देखना है। उनके लिए, शुरुआती वर्षों में पढ़ना एक निरर्थक क्रिया होती है। बच्चे अपने लिए इस दुनिया का अर्थ बनाना चाहते हैं न कि निरर्थकता में संलग्न होना। इसलिए बच्चों के पढ़ना सीखने के कार्यक्रम में भी बच्चे की इस आधारभूत प्रकृति को नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता है। बच्चों को अर्थ निर्माण के लिए इन्तज़ार करने के लिए कहना एक समझदारीपूर्ण प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि बच्चों को तुरंत अर्थ निर्माण की ज़रूरत होती है। अर्थ निर्माण में यह देरी महँगी साबित हो सकती है जिससे पाठ के साथ बच्चों का जुड़ाव टूट जाता है जिसे बाद

में सुधारना मुश्किल हो जाता है। बच्चे यह गहरी धारणा बना सकते हैं कि पढ़ना निरर्थक है और अपने पढ़ने-लिखने की योग्यता को सफल/उपजाऊ तरीके से उपयोग करने में असफल होंगे।

**पूर्व माध्यमिक शालाओं में पढ़ना**

उच्च कक्षाओं में शिक्षक शब्दार्थों को लेकर ज़्यादा चिंतित रहते हैं। आमतौर पर समझ के साथ पढ़ने के मुद्दे पर वे कठिन शब्दों के अर्थ बताकर, पाठ के कठिन हिस्से का वर्णन करके और पाठ्यवस्तु पर आधारित प्रश्न पूछकर इतिश्री कर लेते हैं। ऐसे में, इनकी शिक्षण प्रक्रियाओं के बारे में जो प्रश्न पूछने की ज़रूरत है वह है कि, क्या वे यह सुनिश्चित करते हैं कि बच्चे वह रणनीतियाँ सीख रहे हैं या नहीं जो उन्हें स्वतंत्र रूप से पढ़कर समझने में सक्षम बनाएँ? इसी प्रश्न को ध्यान में रखते हुए, मैं यहाँ ज़्यादातर भारतीय कक्षाओं में आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली शिक्षण पद्धतियों की चर्चा करूँगी।

यह एक प्रथा है कि पाठ की शुरुआत में कठिन शब्दों की सूची दी जाती है और पाठ पढ़ने से पूर्व उन्हें पढ़ना होता है। हालाँकि उन शब्दों को कठिन शब्दों के रूप में चुनने के आधार स्पष्ट नहीं होते हैं। संभवतया, शब्दों को इस अनुमान के आधार पर चुना जाता है कि वे बच्चों के लिए अपरिचित होंगे। हालाँकि, पढ़कर समझने में शब्दावली मददगार होती है लेकिन फिर भी किसी पाठ्यवस्तु को समझने में इसकी महत्ता सीमित ही है। साथ ही, किसी खास शब्द की उस पाठ्यवस्तु को सम्पूर्णता में समझने में शायद कोई सार्थकता नहीं हो सकती है। शोध ने भी दर्शाया है कि किसी पाठ्यवस्तु के शब्दों को उनके मुश्किल पर्यायवाची शब्दों से बदल देने पर भी विद्यार्थियों को उस पाठ्यवस्तु को समझने में कोई मुश्किल नहीं आती है (फ्रीबॉडी एवं एंडरसन, 1983)। इसलिए, किसी पाठ्यवस्तु को समझने की दृष्टि से अपरिचित शब्द हमेशा एक चुनौती नहीं खड़ी करते हैं (नागी एवं हैबर्ट, 2011)। वास्तव में, थीम से जुड़ी हुई गतिविधियाँ जैसे- *ब्रेनस्टॉर्मिंग* और शब्दों को खोजना आदि बेहतर होती है, क्योंकि ये बच्चे के पूर्व-ज्ञान को उभारने में मदद करती हैं (नागी, 1988)।

शिक्षक द्वारा पाठ का सस्वर वाचन करने के पश्चात् उस पाठ की व्याख्या करना भी भारतीय कक्षाओं की एक सामान्य शिक्षण प्रक्रिया है। शाह (2009) ने दिल्ली में छठीं कक्षाओं का अध्ययन किया और पाया कि पाठ को समझाना या उसकी व्याख्या देना हिन्दी साहित्य की कक्षाओं में एक आम प्रक्रिया है। सिन्हा (1985) ने कक्षा-11 को अंग्रेज़ी पढ़ाते हुए यह देखा कि बच्चे पाठ्यवस्तु का अर्थ समझने के लिए पूर्णतया शिक्षिका पर निर्भर रहते

थे और यहाँ तक कि बच्चे बहुत विचलित हो जाते थे जब वह पंक्ति दर पंक्ति व्याख्या देने से मना कर देती थी। वे उससे ऐसा करने की माँग करते थे।

पाठ्यवस्तु की व्याख्या प्रदान करने की यह प्रथा बहुत प्रबल व अनियंत्रित है कि शिक्षक कई बार एक सीधे-सरल वाक्य को भी व्याख्यायित करने का काम करते हैं। वे ऐसा इस उद्देश्य से करते हैं ताकि पाठ्यवस्तु बच्चों को समझ में आए, उनकी पहुँच में आ जाए। हो सकता है शिक्षक द्वारा पाठ्यवस्तु को अपने शब्दों में प्रस्तुत करने पर वह बच्चों की पहुँच में भी आ जाए, लेकिन वास्तव में वे बच्चों के किसी भी पाठ्यवस्तु को स्वयं पढ़कर समझने के मौकों को बाधित कर रहे होते हैं। अत: इनका पढ़ने की रणनीतियों के विकास में गंभीर प्रभाव पड़ता है। पाठ्यवस्तु को समझने व उस तक पहुँच बनाने के लिए बनी-बनाई तयशुदा व्याख्या देने की बजाय अलग तरह के तरीके सोचने की चुनौती को शिक्षकों  को लेनी ही चाहिए। सिन्हा (1985) ने एक प्रक्रिया का वर्णन किया है जिसमें किसी थीम से संबंधित अनेक कविताएँ बच्चों द्वारा पढ़ी गईं व उन पर चर्चा की गई और इस प्रक्रिया के दौरान बच्चे शिक्षक पर अपनी निर्भरता को भूल गए।

*थीम आधारित* पढ़ना बच्चों को अर्थ की ओर प्रेरित करेगा। पूर्व ज्ञान पर चर्चा करना, उन्हीं विषयों से संबंधित पाठ्यवस्तुओं को पढ़ना और चर्चाएँ, ये सभी पढ़ने में स्वतंत्रता व फोकस को विकसित करने के तरीके हैं।

कक्षाओं में पाठ्यवस्तु की समझ को जाँचने के लिए प्रश्नोत्तर को नियमित रूप से इस्तेमाल किया जाता है। वैसे, यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि ये प्रश्नोत्तर तभी मूल्यवान हो सकते हैं यदि ये बच्चों को सोचने और निष्कर्ष निकालने के मौके दें। तथ्यात्मक व याददाश्त वाले प्रश्नों के जवाब पाठ्यवस्तु को सम्पूर्णता में पढ़कर, समझे बिना भी दिए जा सकते हैं।

अपनी बात को समेटते हुए मैं कहूँगी कि यह स्पष्ट है कि, पढ़कर समझने के बारे में इतनी चिंता व विचार के बावजूद, कक्षागत प्रक्रियाएँ पढ़कर समझने की प्रक्रिया को अनजाने में कमज़ोर कर सकती है। यह महत्वपूर्ण है कि हम इस पर पूर्व प्राथमिक वर्षों से ही ध्यान दें एवं कक्षाओं में पूर्व ज्ञान को जाग्रत करने, पढ़ने की रणनीतियों के निर्देश और थीम आधारित चर्चाओं को शामिल करें।

**संदर्भ:**

एंडरसन. आर.सी. (1994). रोल ऑफ द रीडर्स स्कीमा इन कॉम्प्रिहेन्शन, लर्निंग एंड मेमोरी. इन आर.बी. रूडल, एम.आर. रूडल, एंड एच. सींगर (अंक). *थ्योरेटीकल मॉडल्स एंड प्रोसेसेस ऑफ रीडिंग* (चौथा अंक) (पृ. 469-482). डेलावेर : इंटरनेशनल रीडिंग एसोसिएशन.

ब्लॉक, सी.सी. शालर, जे.एल. जॉय, जे.ए. एंड गेन, पी. (2002). प्रोसेस बेस्ड रीडिंग कॉम्प्रिहेन्शन: पर्सपेक्टिव ऑफ फॉर रीडिंग एज्यूकेटर्स. इन सी.सी. ब्लॉक, एण्ड एम. प्रेसली (अंक). *कॉम्प्रिहेन्शन इंस्ट्रक्शन* (पृ. 42-61). द न्यू यॉर्क : द गिलफॉर्ड प्रेस.

ब्राउन, ए.एल. (1980). मेटाकॉग्निटिव डेवलपमेंट एंड रीडिंग. इन आर.जे. शिप्रो, बी.सी. ब्रूस, एंड डब्ल्यू. एफ. ब्रेवर (अंक) *थ्योरेटिकल इश्यूस इन रीडिंग कॉम्प्रिहेन्शन*(पृ. 453-481). हिल्सडेल, एन.जे. : लोरेन्स एर्लबोम एसोसिएट्स.

ड्यूक, एन.के. एंड कार्लिस, जे. (2011). द डेवलपमेंट ऑफकॉम्प्रिहेंशन. इन एम.एल. कमिल, पी.डी. पीयर्सन, ई.बी. मोजे, एंड पी.पी. आफ्लरबेच (अंक*), हैंडबुक ऑफ रीडिंग रिसर्च* (वॉल्यूम पृ. 199-228). न्यू यॉर्क : रूटलेज

फ्रीबडी, पी. एंड एंडरसन, आर.सी. (1983). इफेक्ट्स ऑन टेक्स्ट कॉम्प्रिहेन्शन ऑफ डिफरिंग प्रोपोर्सन्स एंड लोकेशंस ऑफ डिफिकल्ट वोकेबुलेरी. *जर्नल ऑफ रीडिंग बिहेवियर*, 15 (3), 19-39.

कॉशिक, एस. (2004). *टीचर्स असम्पशंस अबाउट अर्ली रीडिंग* (अनपब्लिश्ड एम.एड डेज़र्टेशन) यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, दिल्ली,इंडिया.

मातरेजा, जी (2006). *रीडिंग कॉम्प्रिहेन्शन ऑफ इंग्लिश टेक्स्ट : अ स्टडी ऑफ सेवंथ, नाइन्थ एंड इलेवंथ ग्रेड स्टूडेंट्स* (अनपब्लिश्ड एम.एड डेज़र्टेशन) यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, दिल्ली,इंडिया.

नरसिम्हा, आर. (2004). *केरेक्टराईज़िंग लिटरेसी.* न्यू देहली : सेज पब्लिकेशंस.

नैगी, डब्ल्यू.ई. एंड हर्बर्ट, ई.एच. (2011), टूवर्ड अ थ्योरी ऑफ वर्ड सलेक्शन. इन एम.एल. कमिल, पी.डी. पीयर्सन, ई.बी. मौजे, एंड पी.पी. आफरबेच (अंक), *हैंडबुक ऑफ रीडिंग रिसर्च* (वॉल्यूम प्ट) (पृ.388-404). न्यू यॉर्क : रूटलेज.

नैगी, डब्ल्यू.ई. (1988). *टीचिंग वॉकेबुलेरी टू इम्प्रूव रीडिंगकॉम्प्रिहेन्शन.* अर्बाना, आई.एल.एन.सी.टी.ई. पीयर्सन, पी.डी. एंड ड्यूक, एन.के. (2002).

पीयर्सन, पी.डी. एंड ड्यूक, एन.के. (2002). कॉम्प्रिहेन्शन इंस्ट्रक्शन इन द प्रायमरी ग्रेड्स. इन सी.सी. ब्लॉक, एंड एम. प्रेसली (अंक), *कॉम्प्रिहेंसन इंस्ट्रक्शन* (पृ. 247-258). न्यू यॉर्क : द गिलफॉर्ड प्रेस.

शाह, एस. (2009*). रीडिंग हिन्दी लिटरेचर इन एलिमेंट्री स्कूल कन्टेक्स्ट* (अनपब्लिश्ड एम.फिल. डेज़रटेशन). यूनिवर्सिटी ऑफ देहली, देहलीइंडिया.

सिन्हा, एस. (1985). एक्स्प्लोरिंग लिटरेचर : एनएक्सपीरियंस. *पेरेन्ट्स एंड पेडागॉजीज़*, मई-जून, 3-4.

सिन्हा, एस. (2010). लिटरेचर इंस्ट्रक्शन इन इंडियन स्कूल्स. इन अ. निकोलोपोलो, टी. अब्राहम एंड एफ. मीरबाघेरी (अंक). *एज्यूकेशन फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट*(पृ. 117-128).

विल्किंसन, आई.ए.जी. एंड सन, ई.एच. (2011), अ डायलोजिक टर्न इन रिसर्च ऑन लर्निंग एंड टीचिंग टू कॉम्प्रिहैंड. इन एम.एल. कमिल, पी.डी. पियर्सन, ई.बी. मौजे एंड पी.पी. आफलरबेच (अंक*), हैंडबुक ऑफ रीडिंग रिसर्च* (वॉल्यूम प्ट) (पृ. 359-387). न्यू यॉर्क : रूटलेज़.

**लेखिका परिचय:** शोभा सिन्हा, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। उनकी शोध रुचि में प्रारम्भिक शिक्षा, खासकर निम्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चों की साहित्य के लिए प्रतिक्रिया और कक्षा के सन्दर्भ में शिक्षा शामिल हैं।

sinha_shobha@hotmail.com

**अनुवाद:** पुष्पराज सिंह राणावत व मालविका

**स्रोत:** *लैंग्वेज एंड लैंग्वेज टीचिंग*, जनवरी 2012, 1.1.1 : 22-26